'बिहार गौरव' और 'बिहार वैभव'

❑ ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी

'बच्चों को ज्ञात से अज्ञात की ओर ले जाना', 'प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में पढ़ाई' और 'पाठ्यवस्तु के स्थानीय परिवेश से जुड़ाव' जैसी अनेक शिक्षाशास्त्रीय मान्यताएं आज वैश्विक स्तर पर सूत्र-कथन बन चुकी हैं । लेकिन व्यवहार में गरीब बच्चों की शिक्षा से इन मान्यताओं का कितना ताल्लुक है, यह हम किसी ऐसे बच्चे की पाठ्यपुस्तकें उलट पलट कर जान सकते हैं । छपाई की भूलों को छोड़ भी दें तो तथ्यात्मक भूलों और पाठ्यपुस्तक निर्माताओं के निजी पूर्वाग्रहों से ये पुस्तकें बुरी तरह ग्रस्त रही हैं । समूचे हिन्दी प्रदेशों में ऐसी शिकायतें बराबर उठ रही हैं । यहां बिहार की स्थिति का एक नमूना प्रस्तुत है ।

सोचा था, आज उल-जलूल सरकारी घोषणाओं के जाल में नहीं उलझना । सुबह का सूरज गुनगुनी धूप में उसे गुनने का आमंत्रण दे रहा था। लेकिन सुबह-सुबह कुछ न कुछ पढ़ने की आदत की रजत जयंती मनाने वाले लोग भला इतनी जल्दी मुक्ति कैसे पा जायेंगे ? मैं भी मुक्त न हो सका। भाई अजीत द्विवेदी का ''आजादी का मर्सिया पढ़ते लोग'' शीर्षक लेख इस आदत की पहली खुराक बना। लेख के बेहतरीन शुरुआती हिस्से का कुछ ही अंश अभी पचा था कि कान सतर्क हो गये, जैसे कहीं उस्ताद बिस्मिल्लाह खां ने ''गंगा पारे'' बजायी हो । कानों में आवाज पड़ी ''इस स्वतंत्रता संग्राम की कहानी को हम इसलिये बार-बार दुहराते हैं, ताकि हम उन पिछली गलतियों को फिर दुहरायें जिनके चलते हम परतंत्र हुए थे'' लगातार इस वक्तव्य को सुनने के बाद इच्छा हुई कि देखा जाये, वह शख्स कौन है जो आजादी की स्वर्ण जयन्ती पर इतनी सटीक टिप्पणी दे रहा है । कदम जहां जाकर रुके, वहां सात-आठ साल का एक बच्चा अपनी पाठ्य-पुस्तक का एक अंश रटने की कोशिश कर रहा था ।

मुझे पास खड़ा देख, वह ठिठका । रटना बंद कर दिया। मैंने उससे पूछा - क्या पढ़ रहे हो ? उसने जबाब दिया - अपनी तीसरी कक्षा में पढ़ायी जाने वाली किताब 'बिहार गौरव' का एक पाठ याद कर रहा हूँ । जिसे छठ की छुट्टी के बाद माटसाहेब को सुनाना है । मैंने कहा -'किताब देखकर जरा फिर से उसे पढ़ो जो अभी तुम पढ़ रहे थे । उसने फिर वही अंश पढ़ा जो ऊपर उद्धृत है । मैंने उसके हाथ से वह किताब ले ली और स्वयं पढ़कर देखा। बच्चा बिल्कुल ठीक पढ़ रहा था... ''ताकि हम उन पिछली गलतियों को फिर दुहरायें जिनके चलते हम परतंत्र हुये थे।'' जिज्ञासा हुई उस प्राथमिक शाला के शिक्षक के बारे में भी, जो ऐसी गलतियों को सुधारने के जिम्मेदार माने जाते हैं । बच्चे ने बताया, यह पाठ उसे पढ़ाया जा चुका है और उसे अच्छी तरह याद है - यह ऐसे ही पढ़ाया गया था । वैसे भी उसकी उस किताब में कोई संशोधन नहीं कराया गया था । शायद अन्य पाठों की तरह इसे भी 'तू पढ़-तू सुन' पद्धति से पढ़ा दिया गया होगा।

लगा, इसकी 'मुद्रण संबंधी त्रुटियां' के तहत अनदेखी कर दी जाये। सिर्फ 'न' ही तो छूट गया है, क्योंकि उद्धरण के ठीक नीचे की पंक्तियां तो ठीक ही हैं । लेकिन दूसरे ही क्षण ऐसा लगा जैसे सामने पड़ी किताब के पन्ने फड़फड़ा कर कह रहे हैं - शिक्षा के नाम पर बहुत मीटिंग-मीटिंग खेलते हो, जरा मुझे पढ़कर गुनो तो मानूं । इस चुनौती ने मुझमें जिज्ञासा का संचार किया और मैं बिहार स्टेट टेक्सट बुक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन लिमिटेड द्वारा तीसरी कक्षा के लिए निर्धारित पर्यावरण अध्ययन (समाज अध्ययन) की इस पुस्तक ''बिहार गौरव'' के चौथे संशोधित संस्करण (1994-95) को पृष्ठ दर पृष्ठ पढ़ने लगा । पहला पाठ 'पृथ्वी, ग्लोब और भारत' पर केन्द्रित था। तीसरी कक्षा के छात्र के लिए शीर्षक कुछ अटपटा लगा । फिर सोचा शिक्षा शास्त्रियों की यह मान्यता यहां मान ली गई है कि 'बच्चे को अज्ञात से ज्ञात की ओर' ले जाना चाहिये। शायद इसलिए ग्लोब से उसके गांव तक पहुंचने की कथा यहां दर्ज होगी । तीसरे पृष्ठ पर पहुंचा कि एक चित्र ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया (चित्र दो- ऋतु परिवर्तन दिखलाते हुए ग्लोब और बीच में सूर्य); इस चित्र में दो शब्द पेरिहिलियन और एपहिलियन ऐसे थे जिन्होंने मुझे भी आंख बंद कर सोचने पर मजबूर किया । जिज्ञासा को फिर पंख लग गये । आस-पास के कुछ प्राथमिक शालाओं में पढ़ाने वाले शिक्षकों से इसकी

बाबत जानकारी चाही पर सब मेरी तरह ही अबूझ निकले । 'किसी पाठ में दिया गया चित्र उस पाठ की समझ को बच्चों तक पहुंचाने में सहायता देता है'' - शिक्षाशास्त्र के इस सिद्धांत की इस चित्र ने कलई खोल दी । मन पीछे की ओर लौटने लगा। कुछ-कुछ याद आने लगा । आज से पूरे पच्चीस साल पहले ऐसी ही कोई किताब मैंने भी पढ़ी थी । शायद 'हमारा बिहार' नाम था उसका । घर के पुराने कोनों में उसे खोजने लगा। लेकिन थी तो वह पाठ्यपुस्तक ही, कहां मिलती। शायद इसी बीच में चीनिया बादाम (मूंगफली) हो गई हो । पाठ्यपुस्तकों का यही तो होता रहा है । वह सिर्फ एक खास समय की गवाह होती हैं जैसे उसका कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं होता । फिर भी टटोलते-टटोलते एक पुरानी किताबों की दुकान में 'बिहार वैभव' शीर्षक से 1985-86 में तीसरी कक्षा के लिए ही प्रकाशित पुस्तक हाथ लगी, जिसका पहला संस्करण 1975 में छपा था और यह पहला संशोधित संस्करण था - नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आलोक में । इस पुस्तक की प्रस्तावना से पता चला कि यह 'हमारा बिहार' का ही संशोधित रूप है । इस पुस्तक का पहला पाठ ''हमारा बिहार'' है । जिसकी पहली पंक्ति बताती है कि ''अब तक हम अपने घर, पाठशाला और पास-पड़ौस के बारे में बहुत सी बातें जान चुके हैं । अब अपने राज्य और देश के बारे में कुछ जानें ।''

इन दो पुस्तकों के (बिहार गौरव और बिहार वैभव-कक्षा 3) पहले पाठ का अवलोकन यह बताता है कि आज से 12-13 वर्षों पहले तक कोई ''ज्ञान का विस्फोट'' पश्चिमी देशों में नहीं हुआ था। जैसे ही यह विस्फोट वहां हुआ, उसके कुछ कण यहां गिरे फिर पूरी प्रक्रिया ही उलट गई और घर का स्थान ग्लोब ने ले लिया । यह क्यों और किन कारणों से हुआ, यह एक अलग मुद्दा है । लेकिन जो साफ-साफ कारण दिखायी देता है, उसका पता भी 'बिहार गौरव' के अगले पृष्ठों से चल जाता है। बच्चों की पाठ्यपुस्तकें कैसे रची जाती हैं - यह एक उलझा हुआ मामला नही है । परंपरा रही है कि कॉलेजों, विश्वविद्यालयों में पढ़ाने वाले दिग्गज विद्वान अपनी दुनिया और समझ के हिसाब से बच्चों की पाठ्यपुस्तकें लिखते हैं । जिसे पढ़ाने की जिम्मेदारी उन माटसाहेबों की होती है जिनकी इन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में कोई भूमिका नहीं होती। यदि दिखावे के लिए इनकी भूमिका रखी भी गई तो शामिल बाजा की तरह ही । फलत: बच्चों की पाठ्यपुस्तकें सरकार और राजधानी की संदेशवाहक बनती रही हैं।

'बिहार गौरव' के आगे के कई पृष्ठ इस बात के गवाह हैं कि पुस्तक राजधानी पटना को ध्यान में रखकर लिखी गयी या यूं कहें कि पटना में बैठकर पटना के लिए लिखी गई । मसलन दो-तीन उदाहरण पढ़े जा सकते हैं - इस पुस्तक के पाठ 21 में पृष्ठ 120-130 तक बिहार के दर्शनीय स्थानों का परिचयात्मक विवरण है । पहला दर्शनीय स्थान है - राजगीर। बताया गया है कि कब-कब राजगीर जाना चाहिए । परिचय की अंतिम पंक्ति है - ''पटना से राजगीर तुम बस में बैठकर किसी भी दिन जा सकते हो'' (पृष्ठ - 122) । इसी पाठ में पृष्ठ 125 पर 'पटना' का परिचय दिया गया है जिसमें वर्णित है - 'पटना में कुम्हरार नाम की एक जगह है । इसे तुम जाकर देखो।' इसमें आगे पृष्ठ 127 पर सलाह दी गयी है कि - 'पटना में एक अजायबघर भी है ।' इसे जरूर देखो । यहां यह तथ्य उल्लेखनीय है कि इस पाठ में नालंदा, पारसनाथ, वाल्मीकि नगर, गया, शेरशाह का मकबरा, विश्वामित्र का सिद्धाश्रम, जगदीशपुर का किला, देव का सूर्य मंदिर भी दर्शनीय स्थलों के रूप में वर्णित है परंतु इन्हें देखने की नेक सलाह पुस्तक में संपादकों ने बच्चों को नहीं दी है । क्या यह मान लिया गया है कि ये दर्शनीय स्थान है । इन्हें तो सबको देखना ही चाहिए। फिर पटना के अजायबघर को जाकर जरूर देखने की सलाह अथवा पटना से बस द्वारा राजगीर जाने की सुविधा के एलान का यहां क्या औचित्य है ? क्या राजगीर दर्शन पर पटना का एकाधिकार है ? नि:संदेह यह उस मानसिकता का द्योतक है जो राजधानी को पाठ्य-पुस्तकों का आदर्श और मानक बनाती है। तभी तो पृष्ठ 216 पर लोकनायक के संबंध में यह सूचना दर्ज है कि - ''वे पटना के कदमकुआं मुहल्ले में रहते थे । तुम जब चाहो उनका घर देख सकते हो ।'' क्या यह संभव है कि थरूहट (पश्चिम चम्पारन)व तोरपा-तमाड़ के प्राथमिक शालाओं में पढ़ने वाले तीसरी कक्षा के बच्चे जब चाहें तब कदमकुआं जा सकें ? फिर ऐसे निर्देशों का क्या मतलब होता है ?

वैसे यह पाठ्य-पुस्तक अपने आप में पूर्ण शोध का विषय है जिस पर विस्तृत विश्लेषण की जरूरत है । फिर भी, एक नये ऐतिहासिक तथ्य का उद्घाटन इस पुस्तक में किया गया है जो राज्य ही नहीं सम्पूर्ण देश के इतिहासकारों के लिए एकदम नया है, खोजपूर्ण है - उसका उल्लेख करना मैं यहां जरूरी समझता हूँ । मुझे भी इस तथ्य की सूचना पिछले दिनों तब मिली जब मैं मोतिहारी में अपने एक मित्र के घर गया था। मित्र का बड़ा बेटा जो अभी-अभी अपने ननिहाल रामगढ़वा से लौटा था । अपनी मां से झगड़ा कर रहा था कि सबने मिल कर उसे मूर्ख बनाया कि रामगढ़वा में अशोक की लाट (स्तंभ) नहीं है । वह अपनी पुस्तक की वे पंक्तियां पढ़ कर सुना और

दिखा रहा था जिसमें लिखा था ''रामगढ़वा में अशोक की लाट है''। मामला मेरे सामने भी रखा गया था। तब मैंने भी अपनी पच्चीस साला अनुकूलित आदत के अनुसार इसे मुद्रण संबंधी त्रुटि मानकर उसे समझाया था कि यह गलत छप गया है - रामगढ़वा नहीं रामपुरवा में है अशोक की लाट । पर जब स्वयं इस पुस्तक (बिहार गौरव) को पढ़ रहा था तो पृष्ठ 178 की अंतिम पंक्तियों में नजरें फसीं रह गयी । पाठ 27 में ''हमारे जिले एवं उनका विवरण'' शीर्षक पाठ में पूर्वी चम्पारन जिला का परिचय देते हुए यह लिखा गया है कि -''सुगौली में ही अंग्रेजों और नेपाल के बीच संधि हुई थी । रामगढ़वा में है अशोक की लाट ।'' पूर्वी चम्पारन जिला है जिसमें सुगौली के पास ही रामगढ़वा नामक जगह भी है पर वहां अशोक की लाट है - यह एकदम नया तथ्य है । अब तक किसी इतिहासकार ने इसे नहीं खोजा है । यानि रामगढ़वा में अशोक की लाट नहीं है, यही ऐतिहासिक सच है । फिर इस भूल को छापे की भूल नहीं माना जा सकता है क्योंकि रामपुरवा पश्चिमी चम्पारन जिला में है और यदि इसका जिक्र होता है तो इसी पाठ में ठीक पूर्वी चम्पारन जिला के पहले पश्चिमी चम्पारन जिला का परिचय दिया गया है - रामगढ़वा और रामपुरवा की भूल वहां होती न कि पूर्वी चम्पारन जिला में । वह भी सुगौली के बाद। सुगौली और रामगढ़वा की भौगोलिक दूरी बहुत कम है । निसंदेह यह तथ्यात्मक भूल है जो पिछले आठ वर्षो से बच्चों के बीच परोसी जा रही है । इस पुस्तक का प्रथम संस्करण 1989-90 में छपा था । जिसके बाद यह चार बार संशोधित हो चुकी है । यह कथा 1994-95 में चतुर्थ संशोधित संस्करण से है । यहां यह बताने की जरूरत नहीं है कि राज्य में पाठ्यपुस्तकों का संशोधन कितनी गंभीरता से किया गया है। पाठ्यपुस्तकों को अंतिम सत्य मानने का कार्य विद्यार्थी दशकों से करते रहे हैं । मुझे अब भी उस बच्चे की भाव-भंगिमा याद है जो अपने ननिहाल रामगढ़वा में अशोक के लाट होने की अपनी पाठ्यपुस्तकीय सूचना को ही सही मान रहा था। उसके शिक्षक नाना, चीनी मिल में कार्यरत मामा और रामगढ़वा की माटी में पली-बढ़ी उसकी मां या मेरी दलील सब की सब उसे झूठी और ठगने वाली लगी थी । क्या पाठ्य-पुस्तक निर्माता या प्रकाशक व राज्य सरकार को यह हक है कि वह गलत सूचना देकर विद्यार्थियों को गुमराह करें ? या ऐसी भूलों पर इसलिये ध्यान नहीं देनी चाहिए कि यह छोटे बच्चों की बात है जब वह बड़ा होगा तो स्वयं इस भूल को दूसरी पाठ्य-पुस्तकों की मदद से सुधार लेगा ?

यह पुस्तक कई ऐसे प्रश्न हमारे सामने खड़े करती है जो अब तक अनुत्तरित हैं । वास्तव में यह हमारी उस सोच का प्रतिबिंब है जिसमें बच्चा और उसकी खिलखिलाती दुनिया का कोई महत्व व स्थान नही है। ''प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में पढ़ाई होनी चाहिए एवं शिक्षा बच्चे के परिवेश से जुड़ी होनी चाहिए'' - यह एक ऐसा वेद वाक्य है जिसे प्रथम शिक्षा आयोग (हंटर 1882) से यशपाल समिति (1992) तक के सभी शिक्षा आयोगों - समितियों ने पूरे 115 साल तक लगातार बजाया है और इसके पूर्ण होने का सपना देखा है । यह सपना 'पेरिहिलियन', 'एपहिलियन' व गांव के स्थान पर ग्लोब को रखने से, अथवा राजधानी को मानक मानने से या परिवेश की गलत सूचना देने से कभी पूरा नहीं होने वाला। जब तक बच्चों की दुनिया से सरोकार रखने वाले अपने अधिकार के प्रति सचेत और सजग नहीं होते यह दिवास्वप्न ही रहेगा ।

सामाजिक उदासीनता एक बड़ा कारण है जिससे प्राथमिक शिक्षा लगातार उपेक्षित रही है। शिक्षा को सामाजिक विषय से राजकीय बनाने का कार्य तो विधिवत् 1854 के वुड्स डिसपैच ने शुरू कर दिया था परंतु आजादी के बाद ये धारणा तेजी से मजबूत हुई है । पाठ्य-पुस्तकें लिखवाना, पाठ्यचर्या निर्धारित करना, सब के सब महत्वपूर्ण कार्य सरकार के जिम्मे हैं । समाज का कोई अंकुश इस पर नहीं । सरकार जो चाहे लेखकों और संपादकों के माध्यम से बच्चों की पाठ्य-पुस्तकों में ठूंस दे और शिक्षक, सरकारी मुलाजिम होने के कारण उसे चुपचाप पढ़ाता रहे । इस निरीहता का कारण वह सामाजिक उदासीनता है जिसमें शिक्षक यह विश्लेषण नहीं कर पाते कि वे क्या और क्यों पढ़ा रहे हैं ? ठीक ऐसे ही अभिभावक, कभी यह जानने की कोशिश नहीं करते कि उनका बच्चा बच्ची क्या और किस तरह पढ़ रहा है ? ऐसा भी नहीं कि वे अपने कारणों से सरकार के खिलाफ आंदोलित नहीं होते, लेकिन बचपन और उससे जुड़ी शिक्षा उनके एजेंडा में स्थान नहीं पाती । शायद यह एकमात्र क्षेत्र है जिसमें वे सरकारी दृष्टिकोण और कार्य को उचित मानते हैं । तभी तो देश के सबसे मजबूत प्राथमिक शिक्षकों के संगठनो ने भी कभी यह मुख्य मांग नहीं रखी कि प्राथमिक शिक्षा में नीति निर्धारक के रूप में उन्हें स्थान मिले। जो पढ़ाता है और सच में जो बच्चों कि दुनिया से वाकिफ है वह उनके लिए पाठ्यचर्चा बनाने वाला हो न कि 'गगन विहारी तथाकथित श्रेष्ठ नामधारी विद्वान' उसका कार्य करें । वे क्यों नहीं मानते कि ऐसी भ्रामक पुस्तकों का छपना और लगातार पढ़ाया जाना उनके हस्तक्षेप नहीं करने का परिणाम है । शायद ऐसी स्थिति तब आये जब वेतन, बोनस, और मनचाहे स्थानान्तरण के तीव्र एवं अत्यधिक महत्व वाले मुद्दे हल हो जायें ? अभिभावकों और बुद्धिजीवियों की चुप्पी भी तब टूट

सके, जब सब कुछ (जो थोड़ा बचा है) लुट चुका हो या बहुराष्ट्रीय कंपनियां ऐलान करें कि चुप्पी व्रत तोड़ने के दिन आ गये हैं - हमारे पक्ष में हवा का रुख मोड़ो ।

संविधान के ८३ वें संशोधन से प्रारंभिक शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा मिलेगा - सरकार की यह घोषणा हर्षित कर रही है । लेकिन क्या इस अधिकार से बच्चे उस शिक्षायी तंत्र से मुक्त हो पायेंगे जिनका उनसे कोई सरोकार नहीं - जो उन्हें जोड़ना कम, तोड़ना अधिक सिखाती है, जिसके पाले में उनके अनुभव और आनन्द का कोई महत्व नहीं है । छपाई की गलती के कारण ही सही, लेकिन बच्चा जो रट रहा है - ''इस स्वतंत्रता संग्राम की कहानी को हम इसलिए बार-बार दोहराते हैं, ताकि हम उन पिछली गलतियों को फिर दुहराएं जिनके चलते हम परतंत्र हुए थे ।'' -इस पर ध्यान देना चाहिए। अनजाने ही सही, कहीं वह बच्चा प्रारंभिक शिक्षा की स्वतंत्रता का उद्‌घोष तो नहीं कर रहा? ◆

स्कूलों में बुनियादी सुविधाएं मुहैया कराने के लिए हाईकोर्ट का निर्देश

दिल्ली हाईकोर्ट ने स्थानीय प्रशासन को सरकारी प्राइमरी स्कूलों को इमारत और दूसरी बुनियादी सुविधाएं फौरन मुहैया कराने के निर्देश दिए हैं । अदालत ने पुनर्वास और झुग्गी झोंपड़ी (जेजे) कालोनियों में प्राइमरी स्कूलों पर इस सिलसिले में खास ध्यान देने को कहा है ।

दिल्ली सरकार ने इन स्कूलों में सुविधाओं के बारे में हलफनामा दाखिल किया था । हाईकोर्ट ने हलफनामे पर असंतोष जताया । न्यायमूर्ति अनिल देव सिंह और न्यायमूर्ति मुकुल मुदगल की खंडपीठ ने कहा कि अदालत में सिर्फ बयान दाखिल करना पर्याप्त नहीं होगा । सरकार को व्यवहार में जमीन पर काम दिखाना चाहिए जिसमें इन कालोनियों के बच्चों को अच्छे माहौल में शिक्षा मिल सके ।

खंड़पीठ ने दिल्ली नगर निगम द्वारा संचालित इन स्कूलों की परिस्थितियों को भयावह बताया। खंहडपीठ ने कहा कि इन स्कूलों में शौचालय, पेयजल और पंखे तक नहीं है । दिल्ली नगर निगम को पता होना चाहिए कि स्कूल में शौचालय होना मूलभूत जरूरत है । खंडपीठ ने दिल्ली नगर निगम के अधिकारियों को तुरंत सुलभ इंटरनेशनल से संपर्क करके इन स्कूलों में साफ-सुथरे शौचालयों की सुविधा मुहैया कराने का निर्देश दिया ।

जजों ने निगम के वकील रमन दुग्गल को कहा कि वह 30 नवम्बर को अगली सुनवाई के दौरान अदालत को बताए कि प्रत्येक पार्षद को इस काम के लिए दिया गया धन कैसे खर्च किया गया है । प्रत्येक पार्षद इस काम के लिए 10 लाख रुपए खर्च करा सकता है ।

अदालत ने यह भी पूछा कि क्या ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि इस धन के खर्च पर निगरानी रखी जा सके । अदालत ने पूर्वी दिल्ली के नवीन शाहदरा में निगम के स्कूल के 19 में से 14 कमरों को भी तुरंत खाली करने का निर्देश दिया, जिन्हें निगम के क्षेत्रीय कार्यालय के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा था । अदालत ने इनका प्रयोग केवल शिक्षण के लिए करने को कहा है ।

इस बारे में आल इंडिया लायर्स यूनियन (एआईएलयू) ने दो अलग-अलग जनहित याचिकाएं दाखिल की थीं । अदालत ने नए साल दादरी में सात साल के लड़के की दुर्घटना में मौत पर सतर्कता विभाग की जांच रपट भी दाखिल करने का सरकार को निर्देश दिया । यह लड़का सड़क पर कर पानी पीने गया था क्योंकि स्कूल में पेयजल की व्यवस्था नहीं थी । ◆